

तृतीयावृत्ति  
१९९४

मूल्य  
॥)

धीरमकिशोर गुप्त द्वारा  
साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित ।

वक्क-संहार



श्रीगणेशायनमः

## वक्-संहार

[ १ ]

सञ्चित किये रक्खे हुए,  
शुक-वृन्द के चक्खे हुए,  
कुछ फल कि जो थे दीन शवरी के दिये ;  
खाकर जिन्होंने प्रीति से,  
शुभ मुक्ति दी भव-भीति से,  
वे राम रक्षक हों धनुर्धारण किये ।

[ ० ]

आविध्य और अतिथि-कथा ,  
 तेरा पुराना यह प्रथा ,  
 प्राचीन भारत, आज भी सु गवान है ।  
 अब अतिथि मिथुन मात्र हैं ,  
 अशिक्षा अश अपात्र हैं ,  
 मित्रा बना व्यवसाय, तू भा दान है ।

[ १ ]

ह देश हाकर भा गला ,  
 'तू था तू यों म्याय मगहा ।  
 यह धर्म की धुवता कहाँ तरा बता ?  
 अब मूत चाह भूत हैं ,  
 पर यह यहा हा पूत हैं ।  
 इतिहास देता है हमें पस्तका पता ।

[ ४ ]

वह विप्र का परिवार था ;  
 शुचि लिप्त घर का द्वार था ;  
 पूजा प्रसूनाकीर्ण थी दृढ़ देहली ।  
 आगत अतिथियों के लिए ,  
 शीतल पवन सुरभित किये ,  
 मानो प्रथम ही थी पड़ी पुष्पाञ्जली ।

[ ५ ]

ऊपर लिखा ओझार था ,  
 फिर वद्ध वन्दनवार था ;  
 शोभित वहाँ पर शान्त सन्ध्यालोक था ।  
 भीतर अजिर चौकोर था ;  
 दालान चारो ओर था ;  
 सारांश एक गृहस्थ का वह ओक था ।

[ ६ ]

द्विज वय विघ्नो से रहित ,  
 बना निष्कट, शिष्ट सुख सहित ,  
 मानन्द मन्थ्योपासना था कर रहा ।  
 परितृप्त गृह-सुख-भोग से ,  
 मन्त्र म्वरा क योग से ,  
 माना सुवन का भावना था हर रहा ।

[ ७ ]

था पास हा तुलसीधरा ,  
 जा वायु-शाधक था हरा ,  
 सुमुखी सुता थी दीप उस पर धर रही ।  
 यस, ब्राह्मणा निश्चल रही ,  
 मुकुटित किये आँखें बड़ी ,  
 कैसे कह, किम भाव से थी भर रही ।

[ ८ ]

थी शान्ति पूरे तौर से,  
ध्वनि सुन पड़ी तब पौर से,—  
“गृहनाथ है ? मैं अतिथि हूँ, सुत साथ हैं ।”  
झट ब्राह्मणी चौकी, चली,  
कह कर मधुर वचनावली,—  
“आओ, अहा ! हम सब विशेष सनाथ हैं ।”

[ ९ ]

सचमुच सनाथ हुए सभी,  
ऐसे मनुज देखे कभी !  
कुन्ती सहित पाण्डव अतिथि थे वे भये ।  
लाक्षाभवन के साथ ही,  
आशा जला कुरुनाथ की,  
इस एकचक्रा नगर में थे आगये ।



[ ६ ]

द्विज वर्य विमों से रहित,  
वेदी निष्कट, शिगु सुव सहित,  
सानन्द सन्ध्योपासना था कर रहा।  
परिहृत गृह-सुग्न-भोग से,  
मन्त्र-स्वरा के योग से,  
माना भुवन की भावना था हर रहा।

[ ७ ]

था पास हा हुडसीधरा,  
जो वायु-शोषक था हरा,  
सुसुसी सुता थी दीप उस पर घर रही।  
वस, माधवणी निश्चल लही,  
मुकुलित किये ओंछे वही,  
वैभवे कहें, किस भाव से यी भर रही।

[ ८ ]

थी शान्ति पूरे तौर से,  
ध्वनि सुन पड़ी तब पौर से,—  
“गृहनाथ है ? मैं अतिथि हूँ, सुत साथ है ।”  
झट ब्राह्मणी चौकी, चली,  
कह कर मधुर वचनावली,—  
“आओ, अहा ! हम सब विशेष सनाथ हैं ।”

[ ९ ]

सचमुच सनाथ हुए सभी,  
ऐसे मनुज देखे कभी !  
कुन्ती सहित पाण्डव अतिथि थे वे मत्थे ।  
लाक्षाभवन के साथ ही,  
आशा जला कुरुनाथ फी,  
एस एकचक्रा नगर में थे आगये ।

[ १० ]

सयने वचित स्वागत किया,  
 सुर से उन्हें आश्रय दिया,  
 मृग-चम धारी मृगचारी पाण्डुसुत  
 थे शास्त्र अथ भी सीखते,  
 मों युक्त थे यों दीखते,—  
 । प्रत्यक्ष माना पद्य मर थे, पूर्ति युत ।

[ ११ ]

गचिकर यहाँ का वास था,  
 आदेश भी था व्यास का,  
 इससे यहीं रहने लगे न प्रीति से ।  
 भिक्षाप्त ले आते स्वयं  
 मों को खिला लाते स्वयं,  
 फिर द्विज निषट अभ्यास रगते राति से ।

[ १२ ]

द्विज और भी हर्षित हुआ ,  
 उन पर समाकर्षित हुआ ;  
 शास्त्राविध मन्थन अमृत-हित होने लगा ।  
 विप-विप्र भी जाता कहीं ,  
 वक रूप में निकला वहाँ ;  
 वह धैर्य विप्र-कुटुम्ब का खोने लगा ।

[ १३ ]

जिसमें न हो सवका निधन ,  
 प्रति दिन पुरी से एक जन ,  
 उपहार था उस दैत्य को जाता दिया ।  
 अब विप्र की चारी पड़ी ,  
 कैसी कठिन थी वह घड़ी ,  
 भय-शोक से फटने लगा सवका दिया ।



५

[ १६ ]

निश्चिन्त हो घर-वार से,  
 वन कर विरत, संसार से,  
 सम्वन्ध अपना आप ही मैं तोड़ता ।  
 फिर आत्म-चिन्तन-लीन हो,  
 दृढ़ योग - मुद्रासीन हो,  
 मैं यह विनश्वर देह यो ही छोड़ता ।

[ १७ ]

अब काम यह भी आयगी,  
 निज को सफल कर जायगी ।  
 मैं आज जाऊँगा स्वयं वक के निकट ।  
 तुम लोग शोक करो न यों;  
 मत हो अधीर डरो न यों;  
 जब प्राकृतिक है तब मरण कैसा विरुट ?



[ २० ]

उस मृत्यु के नहीं हैं मैं  
 कोई वचा रखता नहीं  
 पति के लिए मरने के लिए  
 मैं किन्तु यदि मर जाऊँ  
 तुमको वचा कर लूँगी  
 तो कौन-सा हस्ते उठाए तुम लूँगी

[ २१ ]

यदि तुम नहीं तो मैं लूँ  
 मेरा डिङ्गन मैं लूँगी  
 होकर अनाया लूँ लूँ लूँ  
 मैं रह लूँगी कि लूँगी  
 क्या ली लूँगी लूँगी  
 यह वत्स भी लूँगी लूँगी

३१







[ ०६ ]

मैं सुत सुता भा जन चुकी,  
 दुल-बर्धिना हूँ धन चुकी।  
 मेरे बिना अब हानि क्या संसार की ?  
 इस हेतु जाने दो मुझे,  
 यह पुण्य पाने दो मुझे,—  
 जिससे कि रक्षा हो सके परिवार की।

[ ०७ ]

मैं एक तुम में रत यथा,  
 तुम एक पत्नीव्रत तथा।  
 मैं जानती हूँ, तुम कहो न कहो इसे।  
 पर तुम पुरुष हो, श्रीरहो,  
 शानी, गुणी,  
 तुम सह सकोगे मैं न

[ २८ ]

तव शील - सद्गुण - संयुता  
 कहने लगी यों द्विज-सुता,—  
 “हे तात ! हे माँ, तुम सुनो मेरी कही—  
 सूझी मुझे वह युक्ति है ;  
 जिससे सहज ही मुक्ति है ;  
 आनन्द - पूर्वक मैं बताती हूँ वही ।

[ २९ ]

कल हो कि आज, कि हो अभी,  
 पर जानते हैं यह सभी,—  
 हे दान की ही वस्तु कन्या लोक में ।  
 तो त्याग तुम मेरा करो,  
 आपत्ति यो अपनी हरो ।  
 मैं भी वनूँ कुल-कीर्ति-धन्या लोक में ।



[ ३२ ]

पर मैं मरूँ तो ग्लानि क्या ,  
 सब तो बचेगे हानि क्या ?  
 इससे मुझे बलि आज होने दो न क्यों ?  
 लघु लाभ का क्यों लोभ हो ,  
 गुरु हानि का जो क्षोभ हो ।  
 लघु हानि कर गुरु लाभ हो तो लो न क्यों ?

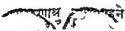
[ ३३ ]

मैं त्याग के ही अर्थ हूँ ,  
 वच भी रहूँ तो व्यर्थ हूँ ।  
 फिर क्यों न मुझको आज ही तुम त्याग दो ?  
 यह और आगे की सभी  
 मिट जायँ चिन्ताएँ अभी ।  
 मैं माँगती हूँ, पुण्य का यह भाग दो ।

[ ३४ ]

सन्तान बह नो तार दे,  
 कुल - भार आप उतार दे।  
 उसको समी हैं चाहते इस भाव में।  
 निज-धर्म धारूँ क्या न मैं,  
 कुल को धारूँ क्या न मैं ?  
 तुम भी तरो यह निपदनद इस नाव से।”

[ ३५ ]

द्विनवयं फिर कन्ने लगा,  

 लगा,—  
 मोह में।  
 तुम्हें

[ ३६ ]

पाणिग्रहण जिसका किया ,  
 सब भार जिसका है लिया ,  
 कैसे उसे मैं मृत्यु - मुख में छोड़ दूँ ?  
 होमाग्नि सन्मुख विधिविहित ,  
 जिसको किया निज में निहित ,  
 सम्बन्ध उस सहधर्मिणी से तोड़ दूँ ?

[ ३७ ]

ब्राह्मणि, सुनो, रोओ न यो ,  
 धीरज धरो, खोओ न यो ,  
 निज हित इसी में तुम भले ही मान लो ।  
 जो आप वक् की वलि बनो ,  
 नव पुत्र-सा कुल-हित जनो ।  
 पर धर्म मेरा क्या ? इसे भी जान लो ।



[ ३८ ]

हा ! और यह कुलपाडिका ,  
 मेरी विनीता बाडिका ,  
 निज मुख वृथा हा आँसुओं से धो रही ।  
 यह आँख मेरी दूसरी ,  
 ६ द्विज आँख मेरी दूसरी ,  
 मेरे लिए हे आप ही दत्त हो रही ।

[ ३९ ]

पर, पुत्रि, इसमें सार क्या ?  
 तेरा यहाँ अधिकार क्या ?  
 तू हर सकला दूसरे घर की व्यथा ।  
 अधिकार पाटन मात्र का—  
 मुझको कि लाटन मात्र का ,  
 सचमुच पराई वस्तु है तू सर्वथा ।

[ ४० ]

जो है धरोहर मात्र ही ,  
 लेगा जिसे सत्पात्र ही ,  
 क्या दैत्य को दूँ मैं उसे उपहार में ?  
 तू ले रही निश्वास है ,  
 पर, क्या तुम्हें विश्वास है ,  
 मैं पढ़ सकूँगा इस अधम अविचार में ?

[ ४१ ]

जिसके लिए तू है बनी ,  
 तेरा बनेगा जो धनी ,  
 आकाश बिना उसकी तुम्हें भी तत्त्व क्या ?  
 जो तू स्वयं कुछ कर सके ,  
 मेरे लिए भी मर सके ,  
 हा ! शान्त हो, एस वन-रुदन में तत्त्व क्या ?

कर-संहार

[ ४० ]

अबला सदा ही रक्ष्य है,  
नर-नीति का यह लक्ष्य है।  
कैसे न स्मृति फिर भला निज नीति में ?  
प्राद्वणि, तुम क्या भय बहाँ,  
अथ धम्म का है जय जहाँ,  
पाता नहा तब टिए कुठ नीति में।

[ ८१ ]

माना नि अनला नारियों,  
होता मन्त्र मनुमागियों,  
पर, वे बला मरना नर्क मसार क्या ?  
कहणा मया, ममता मया,  
सेया - मया, ममता मया,  
वे कर मर्दा सकता यन्त्र - पकार क्या ?

[ ४४ ]

बहु कर्म - कुशला, गुणवती,  
तू है कला - शीला, सती,  
निर्वाह का क्या सोच सालेगा तुम्हें ?  
करके उचित परिचालना, !  
इस पुत्र को तू पालना ;  
होकर युवक यह आप पालेगा तुम्हें ।”

[ ४५ ]

बैठी बहन के स्कन्ध पर,  
रक्खे हुए निज वाम कर,  
फुल-दीप-स्ता बालक खड़ा था स्थिर वहाँ ।  
पाकर समय उसने कहा,  
थी तोतली बाणी अहा !  
“मातुँ अचुल को मैं अभी, वह है कहाँ ?”

[ ४६ ]

था शाय का छाड़ पड़ा,  
उसमें लठी बिगुन्टटा ।  
रोते हँसे, हँसते हुए रोय सभी ।  
तब माझणा न मिर घुना,  
वह रात्र कुन्ती ने सुना ।  
वह वायु गति से आप आ पहुँची तभी ।

[ ४७ ]

“यह शोक कैसा है अरे ।  
तुम लोग क्या ओम्ह मने ?  
आपत्ति क्या तुम पर अचानक आ पड़ी ।  
क्या भय उपस्थित है कन्हे,  
आत्माय हूँ मैं भी अना ।  
जो कर सहुँ, तैयार हूँ मैं हर पहा ।”

[ ४८ ]

तव विप्र ने वक् की कथा ,  
 अपनी तथा सबकी व्यथा ,  
 उसको सुनाई दुःख से, निर्वेद से ।  
 सारी अवस्था जान कर ,  
 अति दुःख मन में मान कर ,  
 कहने लगी कुन्ती वचन यो रस से,—

[ ४९ ]

“हा ! देश वह असहाय है ,  
 मरता, न करता हाय है !  
 मुझसे कहो, राजा यहाँ का कौन है ?  
 कुछ यत्न वह करता नहीं ,  
 कर्तव्य से ढरता नहीं ?  
 मरती प्रजा है और रहता मौन है ।

[ ५ ]

यदि भाव वह दुर्यदमना,  
 तो व्यर्थ क्यों राना बना ?  
 पर न रहा तुम मे किस बात का  
 राना प्रजा के अर्थ है,  
 यदि वह अपद, असमर्थ है,  
 कारण नहीं है तो स्वयं अपात का ।

[ ६ ]

सगर सहस्र उस भूष का,  
 उस पाप के प्रतिरूप का  
 वष के लिए बारी कभी पन्ना नन्ना ?  
 जूझ कि निज पद त्याग न,  
 सयके सहस्र बलि भाग न,  
 न्यायार्थ क्यों उसने प्रजा लट्को नन्ना ?

[ ५६ ]

सबको विपद में छोड़ कर,  
 किस धर्म-धन को जोड़ कर,  
 भद्रे, यहाँ से भाग जाता हाय ! मैं ?  
 सबकी दशा जो हो यहाँ,  
 मैं भागता उससे कहाँ ?  
 निज हेतु क्या सब पर करूँ अन्याय मैं ?

[ ५७ ]

जाकर रहे कोई कहाँ,  
 यह देह रहने की नहीं :  
 आत्मा परन्तु कभी कहाँ मरता नहीं।  
 जो कर्म तत्प्रतिकूल है,  
 करना उसे फिर भूल है।  
 धर्म के प्रतिकूल कुछ करता नहीं।



[ ५५ ]

ना हा, क्या ह भूमिसुर,  
तुम डाड कर यह पापपुर,  
अन्यत्र हा न चर गय कुल-युक्त क्यों ?  
पृथा प्रभु है, पार क्या ?  
एसा यहाँ वा सार क्या ?  
जात कहा पान न ना वफ-मुक्त यों।”

[ ५५ ]

द्विज ने कहा—( कुन्ती रुकी )  
“जो बात निश्चित हो चुकी,  
फिस भौंति मैं उससे मला मुहँ मोडता ?  
अच्छा बुरा जैसा सही,  
वक्-सन्न समझौता यही,  
सबने किया हे, किस तरह मैं तोडता ?

[ ५६ ]

सबको विपद में छोड़ कर ,  
 किस धर्म-धन को जोड़ कर ,  
 भद्रे, यहाँ से भाग जाता हाय ! मैं ?  
 सबकी दशा जो हो यहाँ ,  
 मैं भागता उससे कहों ?  
 निज हेतु क्या सब पर कहूँ अन्याय मैं ?

[ ५७ ]

जाकर रहे कोई कहीं ,  
 यह देह रहने की नहीं ;  
 आत्मा परन्तु कभी कहीं मरता नहीं ।  
 जो कर्म तत्प्रतिकूल है ,  
 करना उसे फिर भूल है ।  
 धर्म के प्रतिकूल कुछ करता नहीं ।

[ ५८ ]

मैं भाग सकता था यथा,  
मन भाग सक्त थे तथा,  
रक्ता व्यवस्था ही कहीं से फिर यहाँ ?  
हम मृत्यु में फिर भी नियम—  
हैं और मरने हेतु मम,  
पर अव्यवस्थित प्राण पा सक्त कहीं ?

[ ५९ ]

गता विवरा है क्या करे,  
यदि यह लड़े मौ तो मरे।  
यल है विपुल वक् का, प्रता लाचार है।  
उग्रोग रत सब छोड़ है,  
पर क्या सहज शुभ योग है ?  
यों एक के मिर नित्य सबका भार है।

[ ६० ]

जन एक देता प्राण है,  
होता सभी का त्राण है;  
सबके लिए निज नाश करना भी भला ।  
फिर किस तरह मैं भागता ,  
निज जन्मभू को त्यागता ?  
दस भाइयों के साथ मरना भी भला ।”

[ ६१ ]

“पर मरण क्या उसका भला,—  
तुप-तुल्य जो धीरे जला ?  
उसकी अपेक्षा भभक जाना ठीक है ।  
हे तेज तो उसमें तनिक ,  
चकचोँध होती है क्षणिक ।  
हा ! एक ही सबकी तुम्हारी लीक है !

[ ६ ]

द्विज ज्ञाना में क्या करें,  
पर मान भी कम रह ?  
नित ज्ञान में ही म दुःख-वर्धन ।  
क्या जन्म-मरण-मा,  
निमृत्तु न न ताव ना,  
विस्तार कम ही भर-मार जय है ।

[ ७ ]

पर शक्ति हम में चाहिए,  
अनुरक्ति हम में चाहिए,  
निर्यल जना का विषय में काइ नही ।  
कुन्ती सिद्ध कर पुत्र हुए,  
( पदोपी पटा फिर पुत्र हुए )  
भर नेत्र आये किन्तु वह रोई नहीं ।

[ ६४ ]

धर धैर्य फिर कहने लगी,  
 वाणी परम प्रियता-पगी,—  
 “कुछ हो, सभी निश्चिन्त तुम वक से रहो ।  
 बस है तुम्हारे एक सुत,  
 पर, पौंच है मेरे अयुत ;।  
 दूँगी तुम्हे मैं एक उनमे से अहो !”

[ ६५ ]

इस बार दो आँसू चुए,  
 सब लोग विस्मित-से हुए ;  
 द्विज ने कहा—“यह क्या अरे ! यह क्या शुभे !  
 तुम अतिथि, मुझको मान्य हो,  
 तेजोनिधान, वदान्य हो ;  
 माना तुम्हे, कण्टक हमारे हैं चुभे ।

[ ६६ ]

पर धम क्या मेरा यही,  
सह क्या इसे लेगो मही ?  
आश्रय दिया या क्या तुम्हें बटि क छि  
मुमको, न तुमको भी मुनो,  
या उचित है, समझो गुनो ।  
सम्भव नहीं यह कृति स्वय कलि के छि

[ ६७ ]

“द विप्र”—कुन्वी ने कहा,  
“यह भूमि है सर्वसंहा ।  
कलि और कृत दुग हैं यहाँ देखो जमी ।  
मिल कर सदैव दुःख-मंडा,  
ससार जाता है चला ।  
होवे बुर न मटे सभी जन हैं कमा ।

[ ६८ ]

निज धर्म तुम हो जानते ;  
 हमको बहुत कुछ मानते ;  
 निज धर्म मैं भी जानती हूँ फिर कहो ,  
 जिसने हमें आश्रय दिया ,  
 सन्तुष्ट सब विध है किया ,  
 उपकार उसका आज क्या हमसे न हो ?”

[ ६९ ]

“उपकार”—द्विज बोला वहाँ—  
 “क्या प्राण देकर भी ?—नहीं,  
 जो प्राण से भी प्रिय अधिक है दृष्टि में,  
 वह पुत्र बलि देकर ? हरे !  
 क्या बह रही हो तुम ज़रे !  
 यह तेज कैसा है तुम्हारी दृष्टि में ?



[ ७ ]

देवा, कहो तुम कौन हो,  
क्या मूर्ति बन कर मौन हो ?  
इदता नहीं देखी कहीं ऐसी कभी ।  
अच्छा रहो, यह ता सुनो,  
तुम कौन सुव दोगी ? चुनो,  
दोगा तथा कैसे, सुनूँ यह तो अभी ?”

[ ७१ ]

“ह विप्रवर, पूछो न यह ।”  
शुन्ती सकी आगे न कह ।  
दिन-पुत्र घुटनों में लिपट कर या रहा ,  
वसको उठा कर गोद में,  
सुहृद् धूम करणाज्माद में,  
बोली कि—“मेरे बत्स, तू बन जा बहा ।”

[ ७२ ]

माँ - चेटियाँ अब रो उठीं,  
 आकुल अधीरा हो उठीं;  
 कहने लगी सविपाद विप्र कुटुम्बिनी,—  
 “यह शिशु तुम्हारा ही रहे,  
 शत बार तुमको माँ कहे।  
 हो रक्षिका इसकी तुम्हीं, मुख-चुम्बिनी।

[ ७३ ]

द्विजवाल्मिका फिर कह उठी,  
 घृत-पुत्तली गल, बड़ उठी,—  
 “पर-हेतु आर्ये, तुम विपद में क्यों पड़ो ?”  
 “देटी, बड़ा सुख है यही।”  
 यह बात सुन्ती ने कही—  
 “तुम भी सदा पर-संकटों से जाँ लड़ो।



[ ७६ ]

उसने कहा—“हे त्यागिनी,  
हे सर्वथा शुभ भागिनी,  
उपकार भी सहनीय होना चाहिए।  
मैं आज इससे दब रहा,  
फिर जाय यह क्यों कर सहा,  
हो, भार भी वहनीय होना चाहिए।

[ ७७ ]

सब सुत तुम्हारे धन्य हैं;  
गुण-रूप-शील अनन्य हैं;  
बल-वीर्य, विद्या-बुद्धि से वे हैं भरे।  
वे पाँच पंच बने रहे;  
क्यों व्यर्थ यह बाधा सहें;  
उनको चतुर्-से कार्य करने हैं हरे !”

[ ७८ ]

“तो एक यह भी कार्य है,  
यह भी उन्हें अनिवार्य है,  
आशीष दो कर लें इसे भी सिद्ध व।  
या तो असुर को मार कर,  
हा धन्य पुरन्ध्रकार कर,  
या कीर्ति लें कर सूर्य मण्डल विद्ध वे।

[ ७९ ]

यह कौन ऐसा मार है,  
निसर्क विशेष विचार है ?  
यह है हमारी अल्पमात्र कृतज्ञता ।  
कैसे न फिर यह व्यक्त हो,  
धुम विप्रवर, न विरक्त हो,  
कर जाँच क्या हम जानकर भी अज्ञता ?”

[ ८० ]

यो प्रश्न-पूर्वक निज कथा ,  
 निःशेष कर मानो वृथा ;  
 कुन्ती विना उत्तर लिए निर्गत हुई ।  
 ठहरी न वह, न ठहर सकी ,  
 अति कार्य कर मानो थकी ;  
 बाहर अटल थी किन्तु भीतर हत हुई ।

[ ८१ ]

आ शीघ्र अपने स्थान पर ,  
 सिर रख स्वभुज-उपधान पर ,  
 वह लेट कर कहने लगी यो आप ही—  
 “दे प्राण, तुम पापाण हो ,  
 अब आप अपने शाण हो ,  
 हा ! दैव मेरे धर्म है सन्ताप ही ।

[ ८ ]

केवल कहा ही है अभी ,  
 अविशिष्ट है करना सभी ,  
 पर मन, अभी से तू विकल होने लगा ।  
 ऐसे चलेगा काम क्या ,  
 तेरा रहेगा नाम क्या ?  
 आरम्भ में ही हाथ । तू रोने लगा ।

[ ९ ]

स्वामी गये शिष्ट छोड़ कर ,  
 राजत्व उनका जोड़ कर ,  
 वह भी गया, अब हाथ । क्या सुत भी चले ?  
 प्रभु, क्यों मुझे इतना दिया ,  
 जो फिर सभी लौटा लिया ,  
 छल कर मुझे क्यों आप अपने से छले ?

[ ८४ ]

जिनके यहाँ दो दिन रही,  
 उपकार जिनका है यही,  
 मरने न जाने दे रही हूँ मैं उन्हें।  
 फिर वक्-निकट चिरभक्ति-मय,  
 जाने मुझे देगे तनय—  
 जो गर्भ से ही से रही हूँ मैं उन्हें ?

[ ८५ ]

भगवान्, मैं ही किस तरह ;  
 जाने उन्हें दूँ इस तरह ;  
 क्या मारने को ही उन्हें जैने जना ?  
 प्रभुवर, परीक्षा लो न चों ;  
 तुम वक्-निर्दय हो न चों ;  
 अवला सदा दयनीय हूँ मैं मृदुमना ।



बद-सहार

[ ८६ ]

तुम निन्तु निश्चय कर यही ,  
यदि हो रह हो आपही ,  
स्वाकार है तो मैं नियूँ चाह मरूँ ।  
ले लो प्रभो, सब जो दिया ,  
मेरे हृदय दूद कर लिया ,  
पर यह घता दो क्या करूँ मैं, क्या करूँ ?”

[ ८७ ]

कर्त्तव्य कुन्ती कर चुकी ,  
वह विप्र-विपदा हर चुकी ,  
वारसल्य धरा अब हो एटो निचलित यही ।  
जो थी शिला-सी निश्चला ,  
अब रुँध गया उसका गला ,  
वह देर तक जल-भग्न सी लेटी रही ।

[ ८८ ]

वह लीन थी भगवन्त में,  
हलका हुआ जी अन्त में;  
हो, बढ़ गई अत्यन्त ही गम्भीरता।  
जब वीर पुत्रों से मिली;  
तब फिर तनिक कोपी-हिली।  
पर, अन्य क्षण मानो प्रकट थी धीरता !

[ ८९ ]

जो था हुआ सब कह गई,  
सुत-समिति विस्मित रह गई।  
घोले युधिष्ठिर तब कि "मों, यह क्या किचा ?  
पर - हेतु मरने के लिए,  
निज सुत, बिना अकषक किये,  
किस भौति भेजेगा तुम्हारा यह हिचा ?

[ ९० ]

मुझको समझ पड़ता नहीं।”  
मौ ने दिया उत्तर वहीं,—  
“यह हृदय ऐसा ही बना है क्या कहूँ ?  
ऐसा जटिल, पूछें किसी,  
बिधि ने बनाया क्यों इसे,  
अगला रहूँ मैं और हा ! सब कुछ सहूँ ।

[ ९१ ]

यह दैव का अन्याय है,  
पर चत्स, कौन उपाय है ?  
पूछो न तुम इस हृदय को कुछ भी दशा ।  
रण में मरण तक के लिए,  
पति - पुत्र को आग किये,  
देती बिदा हैं गर्व कर हम ककशा ।

[ ९२ ]

फिर भी हृदय फटता नहीं,  
 उलटा प्रमद अटेंता नहीं॥  
 पर, दूसरे के दुःख में मेरा हिया,  
 फरुणार्द्र होता है स्वयं,  
 शिशु-तुल्य रोता है स्वयं;  
 श्री व्यास ने इसको यही शिक्षण दिया।

[ ९३ ]

सब पाण्डु-सुत गद्गद हुए,  
 आनन्द से उत्तमद हुए,—  
 "समुचित हमारी जन्मदा को है ज्ञान,  
 हमने परीक्षा ली वृद्धा—  
 हँस कर पुनः बोली पृथ्वी—  
 "बेटा, परीक्षा तो नियत ही है न—"

[ ९४ ]

फिर होगई गम्भीर वह,  
 जिसमें कि हो न अधीर वह,  
 माना न किन्तु तथापि माँ का अश्रुजल ।  
 दो वूँद वह कर ही रहा,  
 सहदेव ने तब यों कहा,—  
 “बलि दो मुझे माँ, जन्म मेरा हो सुफल ।”

[ ९५ ]

“पुनरपि परीक्षा, हाय रे ।  
 कैसे सहा वह जाय रे ।”  
 उसने कहा—“बेटा, तुम्हें बलि दूँ ? रहो,  
 दो पुत्र माट्री ने जने,  
 दो ही रहें मेरे बने ।  
 वस, इस विषय में अब न तुम कुछ भी कहो ।”

[ ९६ ]

तव वीर अर्जुन ने कहा,—  
 “मों, तुम मुझे भेजो, अहा !  
 सब जानते हैं ‘पार्थ’ मेरा नाम है ।”  
 पर भीम ने रोका उन्हें,  
 सप्रेम अवलोका उन्हें,—  
 “ठहरो तनिक तुम, भीम का यह काम है ।

[ ९७ ]

लघु तुम, तथा गुरु आर्य है ;  
 क्या चे तुम्हारे कार्य है ?  
 मो, ठीक है वत्स, किन्तु तुम क्यों रो उठों ?  
 समझा, समझ में आ गया,  
 कर्त्तव्य कृतिपत पा गया ;  
 वात्सल्य-वश अब हाय ! विचलित हो उठी ।

[ ९८ ]

पर माँ, न तुम कुछ भय करो,  
 निज भीम का जय जय करो,  
 इन बाहुआ में बल नहीं निस्सीम क्या ?  
 इन युग्म के रहते हुए,  
 बक - मुष्टियों सहते हुए,  
 पशु तुल्य मरने को हुआ है भीम क्या ?

[ ९९ ]

बक से बहुत जन हैं मरे,  
 उसने लिए बहु ओसरे,  
 धारो उसी की जान लो, अब आगई।  
 बलवान कम न हिडिम्ब था,  
 यम का पृथुल प्रतिविम्ब था,  
 पर, शत्रुता मेरी उसे भी खा गई।

[ १०० ]

सबको यहाँ अब हर्ष हो,  
मेरा नया उत्कर्ष हो;  
समझो इसे हे अम्ब, तुम शुभ योग हो।  
निष्फल निरख कर निज गदा,  
कहता यहाँ मैं था सदा,—  
‘क्या भाग्य मैं है हाय ! भिक्षा-भोग ही ?’

[ १०१ ]

खुजली मिटेगी कल जरा,  
हो जायगा फिर बल हरा;  
दान्त पापी दैत्य मारा जायगा।  
पक्कान्न जो वक् के लिए,  
बलि-संग जाते हैं दिये;  
मों, स्यादु उनका भी मुझे ही आयगा !”



[ १० ]

हँसती तथा रोती हुई,  
 सुध-धुध सभी सोती हुई,  
 कहने लगा कुन्ती कि—“सब जीते रहो,  
 मेरी तुम्हीं से आस है,  
 मन में बड़ा विश्वास है,  
 तुम नित नये यश का अमृत पीते रहो।

[ १०२ ]

सब शत्रुओं को मार कर,  
 पिटु राज्य का उद्धार कर,  
 भोगो सभी सुख भोग मिलकर सर्वदा।  
 गुण-गण तुम्हारे गेय हों,  
 अनुपम चरित चिर ध्येय हों,—  
 दृष्टान्त हो सम्पद निपद में तुम सदा।”

[ १८४ ]

प्रेमाश्रुओं की सृष्टि से,  
दर्शन न पाकर दृष्टि से,  
पाँचो सुतो को युग करों से घेर कर,  
कुन्ती परम प्रमुदित हुई,  
मानों उपा समुदित हुई,  
सरसीरुहो पर निज फनक-कर फेर कर।

[ १८५ ]

हसके अनन्तर किस तरह,  
( हरि मत्त करि को जिस तरह )  
वक-वध वृकोदर ने किया पर दिन वहाँ,—  
लिखते नहीं अब हम इसे,  
पढ़ना यही प्रिय हो जिसे,  
कृपया क्षमा कर दे हमें वह जन वहाँ।



वन-वैभव



# वन-वैभव

पूर्वार्द्ध

[ १ ]

अतुल वह अपना हेमागार ,  
जलाकर फर देने को छार ,  
जानकी रूपी आग अपार ,  
चुराने का करके कुविचार ,  
चला जो रावण निपट निषिद्ध ,  
मङ्गलाचरण फरे वह सिद्ध ?

## वन-वैभव

[ २ ]

“तुम्हारे भाई बेचारे,  
जुएँ मैं जो सब कुछ दारे,  
विपिन में दीन भाव धारे,  
मरफने हैं मारे मारे।

न जानें कैसे हैं य लोग,  
यहाँ हम करते हैं सुख भोग।

[ ३ ]

गवन ल उनका, बलो जग,  
फि वन में होगा हृदय हग।  
वर्षा न निमल नार भरा,  
आन सगया न यागव धरा।”

शकुनि की सुन यों गूढ़ गिरा,  
हँसा दुयाधन हटी निरा।

[ ४ ]

“खबर की तुमने खूब कही,  
उचित है मामा, हमें यही ।  
पिता की आज्ञा किन्तु रही,  
वहाँ मृगया ही मुख्य सही !”

कर्ण ने कहा—“धन्य लक्ष्मी,  
एक ढेले में दो पक्षी !”

[ ५ ]

विफट यह तीन तिफट निल के,  
हँसा फिर सिल खिल कर सिल के,  
हौसले ले ले कर दिल के,  
ताड कर करके तिल तिल के,

सफल करने अभिलाष नया,  
अन्ध नृप-निकट तुरन्त गया ।



[ ६ ]

कहा दुर्योधन ने—“हे तात,  
लगी है कुछ सिंहों की घात ।  
विपिन में है उनका सत्पात,  
जहाँ है अपना पशु-संघात ।

करेंगे हम मृगया वन में,  
घोर यात्रा की है मन में।”

[ ७ ]

सुना भूपति ने “हूँ” करके,  
“ठीक है” कहा आह भर के ।  
“द्वेष है किन्तु वहाँ सर के,  
निचारो तुम्हीं ध्यान घर के ।

वहाँ पाण्डव भा रहते हैं,  
दुःख मन ही मन मानते हैं ।

[ ८ ]

देख कर तुमको सम्मुख हाय !  
क्रोध उनका न कहों जग जाय ।  
रहेगा तो फिर कौन उपाय ?  
न समझो तुम उनको असहाय ।

शक्ति उनकी है सबको ज्ञात ,  
सुरो में भी है यश विख्यात ।”

[ ९ ]

शकुनि ने कहा—“व्यर्थ यह सोच ,  
प्रचल हो वे या पूरे पोच ,  
फहूँगा यह मैं निस्सङ्कोच ,  
नहीं है उनके मन में मोच ।

न हो जब तक अज्ञात-निवास ,  
करेंगे वे न विरोधाभास ।”



[ १२ ]

मुदित थे सब यात्री मन में ,  
समाती स्फूर्ति न थी तन में ,  
नया जीवन था जन जन में ,  
कि होगा अब बिहार वन में ।

जहाँ जिस रात पटाव पड़ा  
हुआ कौतुक-सा वहाँ रगड़ा ।

[ १३ ]

शान्त वन भी तब नगर बना ,  
यहाँ जब शिविर समूह बना ।  
उठा कोलाहल घोर घना ,  
हुए सब खग-मृग भीत-मना ।

जिधर पाण्डव थे, व म —  
सवर-सा — र —



[ १६ ]

हाय ! वह कृष्णा कल्याणी ,  
शेष है घस जिसमें वाणी ,  
कि जो थी फभी महारानी ,  
स्वयं अब भरती है पानी !

किन्तु है मन में मान वही ,  
आन हो कि न हो, वान वही ।

[ १७ ]

सदा पति-सेवा करती है ,  
अतिधियो का भ्रम हरती है ।  
भव्य भावों को भरती है ,  
धर्म अपना आचरती है ।

किन्तु होकर क्षत्रियभार्या ,  
दुःख भूले क्या वह स्वार्या ?



[ २० ]

बाल वे मन्त्रों से अभिषिक्त ,  
हुए जो राजसूय में सिक्त ,  
हो चुके हैं रत्नों से रिक्त ,  
और दुःशासन-रुत अविषिक्त ।

परिष्कृत कैसे हो तब तक—  
शत्रु जन जीवित है जब तक ?

[ २१ ]

सती हँसती भी रोती है ,  
धैर्य धीरो के खोती है ।  
भाँगती और भिगोती है ,  
बोज बदले के बोती है ।

विषम वैराग्य पतिपा ३ ,  
न सौँचे क्यों दग सतिपा ४ ।



[ २२ ]

शत्रु-शक्ति पतियों से कहती,  
द्रौपदी सय कुट है सहती।  
पाण्डु-कुल-शृङ्गा में बहती,  
पवन सी अस्थिर है रहती।

पवन बह कि जो जिलाती है,  
और झोंके भी लाती है।

[ २३ ]

वहों जो रसग-भृग धरते हैं,  
प्यार वस पर वे करते हैं।  
किन्तु मन ही मन डरते हैं,  
पगा में ही सिर धरते हैं।

प्यार क बदले में निर्दिष्ट,  
दया ही है उन सयको दृष्ट।

[ २४ ]

धीर पाण्डव भी भ्रान्त न थे,  
विपिन में बैठे भ्रान्त न थे।  
किन्तु केवल विक्रान्त न थे,  
धीर भी थे कि अशान्त न थे।

समय की उन्हे प्रतीक्षा थी,  
धर्म की जैसी दीक्षा थी।

[ २५ ]

पार्थ ने तप कर मन-भाया,  
विजय-वर शङ्कर से पाया।  
शूर वह सुरपुर हो आया,—  
वहाँ से दिव्यायुध लाया।

यत्न यों उनके जारी हैं,  
विरत कब वे व्रतधारी हों ?

[ २६ ]

वहाँ बहु ऋषि-मुनि आते हैं,  
विश्व व्याख्यान सुनाते हैं।  
शान्ति इनमें सब पाते हैं,  
हुदिन यों बटव जाते हैं।

पुरोहित हैं इनके जो धौम्य,  
कराव हैं सुयज्ञ वे सौम्य।

[ २७ ]

दिखा कर अपना वैभय-वेश,  
जलाने को इनका हृदय,  
सुयोधन ने तज लग्ना-लेश,  
किया वन में जिस समय प्रवेश,

युधिष्ठिर शान्त सुसज्जत थे,  
रुचिर राजर्षि यज्ञ-रत थे।

[ २८ ]

देख कर कौरव-दल, भयभीत  
भगे जो मृग-विहङ्ग कलगीत,  
जान निज शरण उन्हे सुविनीत  
हुए चिन्तित वे परम पुनीत ।

तभी आये कुछ वनचारी,  
उन्होंने कथा कही सारी ।

[ २९ ]

युधिष्ठिर ने ली लम्बी सोंस,  
भीम के रोम हुए कुश-कॉस ।  
गड़ी अर्जुन को मानो गॉस,  
नकुल के नख में थी क्या फाँस ?

सन्न सहदेव हुए निरुपाय,  
हँसी या रोई कृष्णा हाय ।

[ ३० ]

मौन था फिर भी समी समाज ,  
 त्रौपदी थोड़ी तब सन्यास—  
 “भाइया की मुघ लेने आज  
 पधारे हैं घोर-कुल-राज ।

मिट्टी पर मैं कैसे, हाड ?—  
 लिचा है घोर, मुड़े हैं बाड ।

[ ३१ ]

करे आतिथ्य आप सब लोग ,  
 रक्त-राजों का हो संयोग ,  
 हाथ रे ! मद्र-माग्य के भोग ,  
 मरण ही है मेरा उद्योग ।”

उमड़ आये फिर अन्न असीम ,  
 गरज कर धोल उठे फिर सीम—

[ ३२ ]

“उचित आतिथ्य करूँगा मैं ,  
हीनता सभी हरूँगा मैं ।  
काल से भी न डरूँगा मैं ,  
फि मारूँगा फि मरूँगा मैं ।

गिरा कर सु-गुरु गदा की गाज ,  
चुका लूँगा सब बदला आज ।

[ ३३ ]

द्रौपदी, मत हो यो बेहाल ,  
भीम जीवित है अरि-कुल-काल ।  
स्वफर कर शत्रु-रुधिर से लाल  
वही घोंघेगा तेरे बाल ।

स्वयं हरि ने होकर अनुकूल ,  
दिया है तुझे जनन्त दुष्टूल ।

[ ३४ ]

हमारा विभव हमों को आज  
दिखाने आया शत्रु-समाज ।  
नहीं आती नीचा को छाज ,  
देख लूँगा मैं सारे साज ।

हूँसे वे, मैं मुहँ तोड़ूँगा ,  
न जीवा उनको छोड़ूँगा ।”

[ ३५ ]

भीम ये था था प्रोच फठोर ?  
गिरा थी उनकी या घनघोर ?  
पाथ ने घर धन्या की होर ,  
दृष्टि की धम्मराज की ओर ,

फि मिल जाय उनका आदेरा ,  
और मिट जाय मन ये कलेरा ।

[ ३६ ]

फेर कर तव धीरज के साथ  
भाइयों की पीठों पर हाथ ,  
विश्व-विभूत गुण-गौरव-गाथ ,  
बोलने लगे पाण्डु-कुल-नाथ—

“शान्त हो भाई, कृष्णे, शान्त ;  
न आतुर हो तुम यो एकान्त ।

[ ३७ ]

हुआ जो सारा विभव विनष्ट ,  
हुए जो हम सब राज्य-भ्रष्ट ,  
भोगने पड़े हमें जो कष्ट ,  
दोष यह है मेरा ही स्पष्ट ।

किन्तु ज्यों तुमने इसे सहा ,  
सुनो त्यों मेरा आज फला ।



[ १८ ]

पिता के हम प्रिय छोटे थे,  
मरे जब व, हम छोटे थे।  
शदन कर मू पर छोटे थे,  
हमारे दिन जो खोटे थे।

उठाया था हमको किसने ?  
ससे ह सौ प्रणाम निसने।

[ १९ ]

वही पालक बालकपन के,  
पिता हैं इस दुयाधन के।  
वही रक्षक हैं जीवन के,  
वही चाचा पोंग जन के।

पूरा करके श्रुटियों सारी,  
बना माता मौं गा-धारी।

[ ४० ]

उन्होंने हमें सँभाला था ,  
पिता-माता ज्यों पाला था ।  
प्यार सौ पुत्रो वाला था ,  
तदपि हमको दे डाला था !

उन्होंका होने से सुत मात्र—  
क्षमा का है दुर्योधन पात्र ।

[ ४१ ]

सोच कर उनके वे उपकार  
क्षम्य हैं उसके दुर्यवहार ।  
कहूँगा मैं भी किन्तु पुकार,—  
न छोड़ेंगे हम निज अधिकार ।

उचित समझेंगे हम जब जो  
करेंगे उनके हित सब सो ।

[ ४२ ]

नहीं स्वत्यों का जिसको ध्यान  
 फेरता है वह बिभु का दान।  
 और करता है निज अपमान,  
 किन्तु हम हैं क्षत्रिय-सन्तान।

करेंगे पाद चितना त्याग,  
 न छोड़ेंगे भय से निज माग।

[ ४३ ]

अवल भी हा तो क्या परवाह ?  
 करेंगे हम स्वधर्म-निवाह।  
 मरें भी, पर न करेंगे आह,  
 स्वर्ग की खुली पड़ी है राह।

हमारा नहीं प्रजा का राज्य,  
 किन्तु वह नहीं धम्मत त्याज्य।

[ ४४ ]

करें तो करलें वे उपहास ,  
 पूर्ण हो ले अज्ञात निवास ।  
 जायेंगे तब हम उनके पास ,  
 और फिर मोंगेंगे निज न्यास ,  
 उसे यदि देंगे वे हित मान  
 क्षमा पावेंगे बन्धु-समान ।

[ ४५ ]

किन्तु यदि वे हठ ठानेंगे ,  
 न्याय की बात न मानेंगे ,  
 याद रखें, तो जानेंगे ,  
 हमें रण में पहचानेंगे ।  
 राज्य के नहीं, धर्म के अर्थ  
 उठेंगे तब ये शस्त्र समर्थ ।

[ ४६ ]

शान्त हो भाई, कष्ट, शान्त ,  
न आतुर हो तुम यों एकान्त ।  
अभागा दुर्याधन है भ्रान्त ,  
न हो निज सहनशीलता भ्रान्त ।

तुम्हें है क्रोध, मुझ है रस,  
नहीं है हमे द्विवादित भेद ।

[ ४७ ]

दयामय, ऐसे बुद्धि-वर दो ,  
भाइयो, तुम भी यह कर दो—  
और उसको कुछ जयसर दो ,  
घैर्य अपना न यही धर दो ।

कमा करके हरि न सों गप ,  
किया या चेदीखर पर राप ।



[ ५ ]

भले ही कुछ भी हो परिणाम,  
फलाफल से है हमें न काम—  
परेंगे हम स्वकर्म निष्काम,  
निफल भी देंगे वे विधाम ।

और भी शान्त रहें ये बाण,  
हमारे हैं यस आप प्रमाण ।

[ ५१ ]

शान्त हों आर्ष्य भीम, इस धार ।”  
भीम तब बोले मन को भार—  
“आर्ष्य का है जब यही विचार  
बहन करना ही हागा भार ।

सहा तब इनक कहने से,  
हटेंगे अब क्यों सहने से ?

[ ५२ ]

आर्य के पीछे बहु अपमान—

सहे हमने सम्मान-समान ।

आज ही वही हमारा ध्यान ,

किन्तु यह जीवन है बेजान ।

करूँ तो जाकर मैं अब लोप

हिंस्र जीवों पर ही वह कोप !”

[ ५३ ]

भीम यां कह कर वचन यथार्थ ,

गये आवेग - सदृश मृगयार्थ ।

समझ निष्फल-सा निज पुरुषार्थ ,

हुए निश्चल भी चञ्चल पार्थ ।

युधिष्ठिर देकर पुनः प्रबोध ,

मेढरने लगे सभी का क्रोध ।



## उत्तरार्द्ध

[ १ ]

इधर कौरव-दल गौरव धार,  
विपिन में करने लगा विहार।  
गूँजने लगी गान - गुञ्जार,  
नूपुरों की नय-नव स्रष्टार।

कहीं कुञ्जों में काहा, भेट,  
कहीं जल-केलि, कहीं आसेट,

[ २ ]

उसी वन में था एक तड़ाग ,  
जहाँ उड़ता था पद्म-पराग ।  
वहाँ का हरा-भरा भू-भाग ,  
आप उपजाता था अनुराग ।

चौखटे में ज्यो हरे जड़ा ,  
धरा पर हो सुर-मुकुर पड़ा !

[ ३ ]

चौदनी छिदकी थी उस रात ,  
विचरता था वासान्तिक वात ।  
सो रहे थे यद्यपि जलजात ,  
अयुत शशिधेसर में प्रतिभात ।

सरस सर की निहार शोभा ,  
सुरों का मानस भी लोभा ।

[ ४ ]

अप्सराओं को लेकर सज्ज ,  
 नैश निस्तब्ध भाव कर भज्ज ,  
 यदाता हुआ रास-रस-रह ,  
 विश्रय भरे अपूर्व धमज्ज ,  
 चन्द्र तारों को दे प्रीडा ,  
 यहाँ परता था जल प्रीडा ।

[ ५ ]

अचानक इसी समय अनिवार  
 विपिन में करता हुआ विहार ,  
 मूमता हुआ गुञ्जराफार ,  
 साथ में लिये प्रणय-परिवार ,  
 स्वयं भी जल-विहार के हतु ,  
 यहाँ पर आ पहुँचा कुरु-नेतु ।

[ ६ ]

उसे गन्धर्वों ने टोका ,  
तर्जनी दिखलाई रोका ;  
जरा-सा खाकर तब भोका ,  
क्रोध से उसने अवलोका ।

उठी जो उसकी भृकुटि फराल ,  
सिर्ची सौ तलवारें तत्काल !

[ ७ ]

हुआ गन्धर्वों पर अघात ,  
चित्ररथ तक पहुँची यह बात—  
कि 'कोई उद्धत मानव-जात  
मचाता है आफर उत्पात ।'

सिन्धु से उच्चैःश्रवा-समान ,  
हुआ सरनिर्गत वह बलवान ।

[ ८ ]

क्षोभ से जलने लगा शरीर,  
 बिना पोंछे ही सूगा नीर ।  
 बदल कर पल्ल शीघ्र बह बोर,  
 लठा कर धनुष, चढ़ा कर तीर—

निघर होता था रण का शोर,  
 चला शार्दूल-सदृश उस ओर ।

[ ९ ]

अपसराएँ पुष्पगिणा-सा,  
 दस भय-धाघा करिणी-सी,  
 विफल हो दहरी दग्गिना सा,  
 कौपसी थीं सब तरिणा-सा ।

हाथ से देकर गूँद प्रयाग,  
 चित्ररथ चला गया सन्तोष ।

[ १० ]

पहुँच दुर्योधन - सन्मुख शूर,  
घोर नेत्रों से उसको घूर,  
कूकता हो ज्यों कुपित मयूर  
वचन बोला सुस्वर से क्रूर—

“कौन है तू, ओ उद्धत, धृष्ट,  
यहाँ जो आया मरणाकुष्ट ?”

[ ११ ]

सुयोधन भी बोला सक्तोष—  
“शातक्या तुझको नहीं अवोध,  
कि करके जिसका मार्ग निरोध,  
किया है तुमने आत्म-विरोध ।

वही एस पृथ्वी का स्वामी  
सुयोधन नृप हूँ मैं नामी ?”

[ १२ ]

“अरे, तू ही दुर्याधन है,  
दुष्ट, दान्मिक जो दुर्जन है,  
अनुग जिसका दुःशासन है,  
प्रकट जिसका धामरपन है ?

माइयों को भिक्षुक करके  
बना नृप सनका धन हरक ।

[ १३ ]

मानता हूँ तू है नामी,  
किन्तु कुल-काळ, कुपथगामा ।  
आज इस पृथ्वी का स्वामी  
बना फिरता है तू कामी ।

पकड़ रखना तू इसका हाथ  
सती होगी यह तेरे साथ ।

[ १४ ]

मूढ़, तुझ-से कितने भूपाल  
हुए, है, होंगे विपुल विशाल ।  
किन्तु सबके पीछे है काल,  
रहा इसका ऐसा ही हाल ।

बहुत है यही, कहूँ क्या और  
कि देगी तुझको भी यह ठौर ।

[ १५ ]

तुम्हें है लगा राज्य का रोग,  
एष्ट है अपना ही भू-भोग;  
कि भाई हैं जो पाण्डव लोग,  
सह उनका भी नहीं सुयोग ।

किन्तु है भूपर सबका भाग,  
करेंगे जिसे न सुण भी त्याग ।













[ २६ ]

धर्म क्या है इतना असमर्थ  
कपट जो करे प्रगति के अर्थ ?  
अर्थ ही तब तो हुआ अनर्थ ,  
पुण्य का होना ही है व्यर्थ !

शोक में ही तब तो सुख हो ,  
हमें फिर क्यों दुःख में दुःख हो ?

[ २७ ]

सुयोधन से उसके अनुसार  
करें यदि हम भी दुर्न्यायहार ,  
रक्षा हममें भी फिर क्या सार ?  
करो कुछ इसका तुम्हीं विचार ।

हमारा-उसका तो है नाम ,  
किन्तु है पुण्य-पाप-संप्रान ।”



[ ३० ]

“विजित है वन्धु आपके सर्व ,  
 उन्हें हैं घोध चुके गन्धर्व ,  
 शकुनि, कर्णादिक का भी गर्व  
 हो गया रण में सहसा खर्व ।”

शत्रुओं का सुन यो अपकर्ष ,  
 पृकोदर बोले शीघ्र सहर्ष—

[ ३१ ]

“शूर-मद था उनकी भरपूर ,  
 हुआ वह आज अचानक चूर ।  
 चलो, हम सबके कोटे क्रूर  
 हुए ऊपर के ऊपर दूर !

लड़ें उनके पीछे हम क्यों ?  
 करें प्रतिप्लव परिमम क्यों ?





[ ३४ ]

भीम के ऐसे भाव विलोक ,  
हुआ पाण्डव-पति को अति शोक ।  
सके वे और न मन को रोक ,  
और यो बोले उनको टोक—

“भीम, शरणागत का अपमान !  
कहो है आज तुम्हारा दान ?

[ ३५ ]

कौरवों ने जो अत्याचार—  
किये हैं हम पर वारंवार ,  
करंगे उनका एसा विचार ,  
नहीं औरों पर इसका भार ।

कृर कौरव अन्यायी हैं ,  
हमारे फिर भी भाई हैं ।



[ ३८ ]

वत्स अर्जुन, सत्वर जाओ,  
और तुम उन्हे छुड़ा लाओ।  
शत्रु समझो, तो भी आओ  
द्विगुण जय यों उन पर पाओ।

भीम, सहदेव, नकुल सब लोग,  
करो जाकर समुचित उद्योग।”

[ ३९ ]

कहा अर्जुन ने—“जो आदेश,  
किन्तु सब लोग करें क्यों क्लेश?  
द्रौपदी, क्या है राज्योदेश?  
बोध सफती हो अब तुम पेश।

आर्य के इस सद्भाव-समक्ष  
और क्या हो सकता है लक्ष?”



[ ४२ ]

प्रेम-पूर्वक बोले तब पार्थ—

“हुआ मैं आज अतीव कुतार्थ ।

यहाँ है ऐसा कौन पदार्थ ,

करूँ जिससे आतिथ्य यथार्थ ?

किन्तु ये भाई हैं मेरे—

आप यो जिनको हैं घेरे ।”

[ ४३ ]

चित्ररथ बोला—“कैसी बात !

ज्ञात तो हैं इनके उत्पात ?”

कहा अर्जुन ने—“सच हैं ज्ञात ,

विश्व भर में हैं वे विख्यात ।

किन्तु कहते हैं आर्य उदार—

करेंगे उनका हमों विचार ।”









[ ५० ]

हुई रक्ताक्त आपकी देह !”

चित्ररथ बोला तब सस्तेह—

“विजलियों चमकीं, वरसा मेह,

वृष ही हूँ मैं हे गुण-गेह ।

आत्मजय तुमने पाया है,

शत्रु का शत्रु हराया है !”

[ ५१ ]

लिये तब फौरव-दल को सङ्ग—

उड़ा था जिसके मुँह का रङ्ग ।

फिरे अर्जुन ज्यो मत्त मतङ्ग,

पोठ पर डुलता चला निपङ्ग ।

पहुँच कर पाण्डव-राज-समीप,

प्रणत वे हुए पाण्डु-दुल-दीप ।

[ ५२ ]

यथा दुर्याधन का भी भाल ,  
अश्व में भर उसको तत्पार ,  
युधिष्ठिर राज औंसू टाल—  
“कल शत्रु पाला / कुल पाल ।”

किन्तु दुर्याधन का यह मौन  
क्या सम्मति-सचूक कौन ?

---

